श्रीमन्निग्रहाचार्यकृता

कालजिह्वाप्रशस्ति

(गृहपतिसूत्रम्)

लेखक
श्रीभागवतानंद गुरु

सम्पादिका
उषाराणी सङ्का

आर्यावर्त सनातन वाहिनी के सौजन्य से प्रकाशित
Notion Press

NOTION PRESS
India. Singapore. Malaysia.

ISBN xxx-x-xxxxx-xx-x

First Published – 2021
Third Edition - 2022

श्रीमन्निग्रहाचार्यकृता

कालजिह्वाप्रशस्ति

(गृहपतिसूत्रम्)

लेखक

श्रीभागवतानंद गुरु

सम्पादिका

उषाराणी सङ्का

आर्यावर्त सनातन वाहिनी के सौजन्य से प्रकाशित

Notion Press

धर्मसंरक्षणार्थायाधर्मसंहारहेतवे ।
निग्रहाणाञ्च धर्माज्ञा लोके लोके प्रवर्धताम् ॥



श्रीभागवतानंद गुरु (श्रीनिग्रहाचार्य)

भूमिका

श्रीभागवतानंद गुरु जी के बारे में परिचय देने की आवश्यकता नहीं है। उनकी सारी कृतियां उनके उत्कृष्ट ज्ञान एवं उन्नत साधनास्तर का परिचय देतीं हैं। इनके कार्योद्देश आदि विषयों को इनके अनुयायी व विरोधी सभी भलीभाँति जानते ही हैं। इन्हीं की लेखिनी से प्रस्तुत यह दो कृतियां प्रकाशन के भागी हो रही हैं- एक गृहपतिसूत्रव्याख्या एवं एक कालजिह्वाप्रशस्ति। यह दोनों कृतियाँ अलग न होकर आपस में बहुत घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं। संस्कृतभाषा में सूत्रपरम्परा का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है।

अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद्विश्वतोमुखम्।
अस्तोभमनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः॥

सूत्र अत्यंत कम शब्दों में अति संक्षिप्त रूप से बहुत बड़े विस्तार विषय को बताने की एक सशक्त प्रक्रिया है। निग्रहाचार्य श्रीभागवतानंद गुरु जी द्वारा अनुसरित यह सूत्रों के अर्थ विवरण एवं विस्तृत व्याख्यान- हर शास्त्र के क्षेत्र में प्राचीन काल से होता चला आ रहा एक अनूठा पारंपरिक विधान है और विषयावबोधन के लिये अत्यंत उपयुक्त प्रक्रिया है।

ग्रन्थ के पहले भाग के गृहपतिसूत्र का विषय अत्यंत गंभीर, आध्यात्मिक एवं आत्मज्ञान संबंधी होने के कारण और भी महत्त्व रखता है। कुल 50 सूत्रों के इस ग्रन्थचय के पहले भाग में प्रत्येक सूत्र के साथ साथ उन्होंने सूत्रों की संस्कृतव्याख्या एवं हिंदी अर्थ प्रस्तुत किए हैं। व्याख्याविधान के सभी नियमों का इन्होंने सटीक पालन किया है। भाषा सरल होते हुए भी गम्भीर है, एवं अल्पज्ञों के लिये भी सुबोध है। भगवत्साधना के रङ्गभूमि पर स्वप्नावबोध का अनोखा माध्यम केवल संयोग नहीं हुआ करता है। यह माध्यम सत्यता एवं

सम्भवता के परिप्रेक्ष्य में अत्यंत उन्नत भूमिका पर स्थित है और साधक को ही नहीं, उसके द्वारा समाज के लिये भी सर्वोन्नतश्रेय प्रदान करनेवाली है। ऐसी किसी अप्रतिम घटना का ही यहाँ दूसरे भाग कालजिह्वाप्रशस्ति शतक में उल्लेख हुआ है। शत पद्यों में निबद्ध यह श्रव्यकाव्य क्षिप्रगति से चलता हुआ कोई सम्भ्रमात्मक आध्यात्मिक रूपक सा प्रतीत होता है। इसमें मूलपद्यसहित संस्कृतव्याख्यान एवं हिन्दी अर्थ भी उपलब्ध कराये गये हैं। इस ग्रन्थरचना की भूमिका के रूप में हुई स्वप्नघटना का विस्तार से विवरण पौराणिकशैली में होने के कारण यहाँ प्राचीनता एवं आधुनिकता का अद्वितीय संगम है।

यह सारा घटनाक्रम सरलभाषा से युक्त होकर महद्रोचकता, अचम्भा एवं रोमाञ्चकारी कथावस्तु से युक्त होने के कारण आध्यात्मिक अवबोधन के लिये अतुलनीय, उत्कृष्ट व शालीन पृष्टभूमि बनाता है। कथनशैली मात्र से एक दृश्यकाव्य का प्रभाव डालनेवाला यह सारा कथांश कई सुन्दर छन्दों में निबद्ध होकर साहित्यिक दृष्टि से भी महत्त्व रखता है। अप्रसिद्ध हुए कुछ चुनिंदा धातुओं का प्रयोग लेखक की भाषापटिमा को दर्शाने के साथ साथ भाषा को नवीनता प्रदान करता हुआ उनकी प्रतिभा का परिचायक सिद्ध होता है। इतने उपकारक वस्तु से युक्त कृतियों की भूमिका लिखने का अवसर मुझे दिया गया है- इसके लिये निग्रहाचार्य श्रीभागवतानंद गुरुजी को अनेक धन्यवाद। उनके आगे के सभी कार्यों के लिये उन्हें अनेक मंगलकामनायें।

--उषाराणी सङ्का
27 नवम्बर 2021
(कार्तिकबहुलाष्टमी, स्थिरवासरः)

सूत्रखण्डे

॥ अथ गृहपतिसूत्रम् ॥

गृहपतिसूत्रम्

अद्वेष्टृभ्योऽद्वेष्टृभावो धर्मः ॥०१ ॥

व्याख्या - संसारपटले सर्वभूतहितचिन्तकेभ्यो द्वेषभावरहितेभ्यः साधुभ्यो द्वेषभावस्य परित्यागो धर्म इत्युच्यते बुधैः ।

अर्थ - संसार में सभी प्राणियों के प्रति हित का चिन्तन करने वाले, द्वेषभाव से रहित साधुओं के प्रति द्वेषभाव का परित्याग बुद्धिमानों के द्वारा 'धर्म' ऐसा कहा जाता है।

गृहपतिसूत्रम्

सर्वव्यापकः ॥०२ ॥

व्याख्या - धर्मस्तु सर्वव्यापकः। कालदेशतत्त्वजनाश्रितो नैव। सर्वेषु कालेषु देशेषु स्थितिषु जनेषु वा व्यापको भवति न त्वेकस्मिन्नेव।

अर्थ - धर्म सर्वव्यापी होता है। वह काल, देश, तत्त्व या व्यक्ति पर आश्रित नहीं होता। सभी काल, देश, स्थिति और व्यक्ति में व्यापक होता है, किसी एक में ही स्थित नहीं होता।

गृहपतिसूत्रम्

कालसापेक्षिके गती ॥०३ ॥

व्याख्या - तस्य द्वे गती। वृद्धिशीला क्षयशीला च। उभे धर्मस्य भौतिकविस्तरस्य न तु धर्मतत्त्वस्य। कालसापेक्षकत्वात्कृतादौ वृद्धिशीला कल्यादौ क्षयशीला च। वृद्धौ सुखं क्षये दुःखं भवतः।

अर्थ - उस (धर्म) की दो गतियाँ हैं। वृद्धिशीला एवं क्षयशीला। ये दोनों धर्म के भौतिक विस्तार की गतियाँ हैं, धर्मतत्त्व की नहीं। काल के सापेक्ष सत्ययुग के प्रारम्भ में वृद्धिशीला एवं कलियुग के प्रारम्भ में क्षयशीला गति होती है। वृद्धिशीला में सुख एवं क्षयशीला में दुःख होता है।

गृहपतिसूत्रम्

उभयनिर्धारकः ॥०४ ॥

व्याख्या - मर्त्यलोकस्य परलोकस्य च गतयो योनयो धर्मेण निर्धारिताः। तस्माद्धर्म एवोभयलोकयोर्निर्धारकः।

अर्थ - मर्त्यलोक एवं परलोक की गतियाँ एवं योनियाँ धर्म से निर्धारित होती हैं। अतएव धर्म ही दोनों लोकों का निर्धारक है।

गृहपतिसूत्रम्

गोषु स्थितः ॥०५॥

व्याख्या - गोषु धेनुषु वेदेषु च धर्मः प्रतिष्ठितो भवति। ऋषयो देवताः सर्वे गोषु वेदेषु संस्थिताः। तस्माद्गोवेदतोषेण धर्मस्तुष्यति नान्यथा॥

अर्थ - गौ में, अर्थात् धेनुसंज्ञक गौ एवं वेदसंज्ञक गौ में धर्म प्रतिष्ठित होता है। सभी ऋषि एवं देवता गौ तथा वेद में स्थित रहते हैं अतएव गौ एवं वेद के सन्तुष्ट होने पर धर्म भी तुष्ट रहता है, इसमें कुछ और विचार नहीं करना चाहिए।

गृहपतिसूत्रम्

क्षोभाद्धानिः ॥०६॥

व्याख्या - यदा गवानां वेदानां वेदनं क्षोभः क्लेशश्च भवति तदा लोके प्रसरितधर्मस्य हानिर्भवति।

अर्थ - जब गौ एवं वेदों को पीड़ा दी जाती है, उन्हें क्षोभ होता है, उन्हें कष्ट की अनुभूति होती है, तब संसार में फैले हुए धर्म की हानि होती है।

गृहपतिसूत्रम्

चत्वारः पादाः ॥०७ ॥

व्याख्या - धर्मस्य चत्वारः पादा भवन्ति। सत्यं तपो दया दानञ्च।

अर्थ - धर्म के चार पैर, चरण अथवा आधार होते हैं। उनके नाम हैं - सत्य, तप, दया एवं दान।

गृहपतिसूत्रम्

युगेषु न्यूनाधिक्यम् ॥०८ ॥

व्याख्या - युगव्यवस्थानुसारेण पादानां हानिर्वृद्धिर्वा भवति। कृते सर्वे पादाः व्यवस्थिताः। त्रेतायां त्रिभिराश्रितः। द्वापरे द्वौ पादौ कलौ चैको घोरे पादहीनः। वैष्णवमतेन कलौ सत्यं शैवमतेन दानं धर्मपादः।

अर्थ - युगों की व्यवस्था के अनुसार इन चारों चरणों की हानि अथवा वृद्धि होती है। सत्ययुग में चारों चरण व्यवस्थित रहते हैं। त्रेता में धर्म तीन चरणों पर आश्रित रहता है। द्वापर में दो पैर होते हैं एवं कलियुग में एक ही पैर होता है। घोर कलियुग

में (कलियुग के दस हज़ार वर्ष बीतने पर) धर्म पादहीन हो जाता है। वैष्णवमत से कलियुग में धर्म का एकमात्र चरण सत्य है और शैवमत से दान है।

गृहपतिसूत्रम्

धृतिर्धर्मः ॥०९॥

व्याख्या - धारणाशक्त्या धर्मो ज्ञायते। स्वयोनिलिङ्गवर्णाश्रमानुसारेण विहितकर्तव्यधृतिर्धर्मः।

अर्थ - धारणाशक्ति के द्वारा धर्म जाना जाता है। अपनी योनि, लिंग, वर्ण एवं आश्रम के अनुसार विहित कर्तव्य की धृति (धारणा) धर्म है।

गृहपतिसूत्रम्

क्षमा धर्मः ॥१०॥

व्याख्या - स्वहानिमुपेक्ष्य प्रारब्धादागत इति विचिन्त्यानुपकारिणे द्वेषक्रोधयोर्विसर्जनं धर्मः।

अर्थ - अपनी हानि की उपेक्षा करके, यह प्रारब्धवश आ गया है, ऐसा सोचकर अपना अहित करने वाले के प्रति द्वेष एवं क्रोध का परित्याग करना धर्म है।

गृहपतिसूत्रम्

निग्रहो धर्मः ॥११ ॥

व्याख्या - अधर्माचरणकर्तृणो निग्रहकर्म धर्मः। न धर्मकर्म बाधयेत्।

अर्थ - जो व्यक्ति अधर्म के आचरण में लिप्त है, उसे नियन्त्रण में रखकर दण्डित करना धर्म है। धर्म के कार्य में बाधा नहीं पहुंचानी चाहिए।

गृहपतिसूत्रम्

निग्रहोऽधर्मः ॥१२ ॥

व्याख्या - धर्माचरणकर्तृणो निग्रहकर्म अधर्मः। नाधर्मकर्म प्रोत्साहयेत्।

अर्थ - जो व्यक्ति धर्म के आचरण में लिप्त है, उसे नियन्त्रण में रखकर दण्डित करना अधर्म है। अधर्म के कृत्य को प्रोत्साहन नहीं देना चाहिए।

गृहपतिसूत्रम्

अनुग्रहो धर्मः ॥१३ ॥

व्याख्या - धर्माचरणकर्तृणोऽनुग्रहकर्म धर्मः। धर्मकर्म प्रोत्साहयेत्।

अर्थ - जो व्यक्ति धर्म के आचरण में लिप्त है, उसके प्रति अनुग्रह या कृपा का कार्य करना धर्म है। धर्मसम्मत कार्य को प्रोत्साहित करना चाहिए।

गृहपतिसूत्रम्

अनुग्रहोऽधर्मः ॥१४ ॥

व्याख्या - अधर्माचरणकर्तृणोऽनुग्रहकर्म अधर्मः। अधर्मकर्म बाधयेत्।

अर्थ - जो व्यक्ति अधर्म के आचरण में लिप्त है, उसके प्रति अनुग्रह या कृपा का कार्य करना अधर्म है। अधर्म के कार्य में बाधा पहुंचानी चाहिए।

गृहपतिसूत्रम्

विभिन्नात् ॥१५ ॥

व्याख्या - नानाशास्त्रेषु श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासागमेषु विभिन्नदृष्ट्या धर्मो व्याख्यायितस्तस्मात्तेषां सारवाक्यमुद्धृत्याचरेत्।

अर्थ - अनेकों प्रकार के शास्त्रों में, वेद, स्मृति, पुराण, इतिहास एवं आगमशास्त्र के ग्रन्थों में अलग अलग दृष्टिकोणों से धर्म की व्याख्या की गयी है, अतएव उनके सारवाक्य को समझकर या सारवाक्य का आश्रय लेकर ही आचरण करना चाहिए।

गृहपतिसूत्रम्

योनिरूपत्वात् ॥१६ ॥

व्याख्या - देवतिर्यङ्नरादिषु योनिषु द्वादशविधो धर्मः प्रजापतिना निर्दिष्टो मयापि धुरन्धरसंहितायामुपदिष्टः। स्वयोनिधर्ममाश्रित्य कर्तव्यमाचरेत्।

अर्थ - देवता, पशु, मनुष्य आदि योनियों में बारह प्रकार का धर्म प्रजापति के द्वारा निर्दिष्ट किया गया है एवं मेरे (निग्रहाचार्य के) द्वारा भी धुरन्धरसंहिता में उनका उपदेश किया गया है। अपनी योनि के अनुसार निर्दिष्ट धर्म का आश्रय लेकर कर्तव्य का आचरण करे।

गृहपतिसूत्रम्

तदधीनं सर्वम् ॥१७ ॥

व्याख्या - ईश्वरस्येच्छया दृश्यादृश्यमिदमखिलं स्फुलति। न तेनातिरिक्तः किञ्चिदस्ति न तस्य नियन्तापितु तदधीनमेव।

अर्थ - ईश्वर की इच्छा से यह दृश्य एवं अदृश्य, सम्पूर्ण जगत् चलायमान है। उसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है और उसके ऊपर किसी का नियन्त्रण भी नहीं है अपितु सभी उसके ही अधीन हैं।

गृहपतिसूत्रम्

कर्तव्याकर्तव्यो विवेकः ॥१८॥

व्याख्या - शास्त्रवाक्यानुसारेण निःशेषजाड्यनिवारणहेतवे कृतं कर्म कर्तव्यमिति। शास्त्रवाक्यमतिक्रम्य निःश्रेयसमुपेक्ष्य कृतं कर्माकर्तव्यमित्यनयोः शुद्धबोधो विवेकः।

अर्थ - शास्त्रवाक्य के अनुसार समस्त जड़ता के निवारण हेतु किया गया कर्म कर्तव्य है। शास्त्रवाक्य का अतिक्रमण करके अपने कल्याण की उपेक्षा करके किया गया कर्म अकर्तव्य है। इन दोनों का शुद्धतापूर्वक बोध विवेक है।

गृहपतिसूत्रम्

वैपरीत्ये स्वेच्छा ॥१९॥

व्याख्या - शास्त्रविधानमुत्सृज्य विपरीतभावनया स्वेन्द्रियविषयाक्रान्तचित्तो भूत्वा यद्यदाचरति तत्तु स्वेच्छा।

अर्थ - शास्त्र के विधान को छोड़कर विपरीत भावना से अपनी इन्द्रियों के विषय से आक्रान्त चित्त वाला होकर जो कुछ आचरण करता है, उसे स्वेच्छा कहते हैं।

गृहपतिसूत्रम्

शास्त्तर्यवधूतत्वम् ॥२० ॥

व्याख्या - चेद्यदि शास्त्रमर्यादामतिक्रम्य स्वभावत आत्मन्येवात्मानमात्मना शास्ति तदावधूतत्वम् प्राप्नोति।

अर्थ - किन्तु यदि स्वभावतः ही शास्त्र की मर्यादा के अतिक्रमण हो जाये एवं आत्मतत्त्व में ही आत्मतत्त्व के द्वारा ही आत्मतत्त्व का शासन होने लगे तो उस समय अवधूतावस्था को प्राप्त कर लेता है।

गृहपतिसूत्रम्

स्थूला मलाः शिष्यनिष्कृतिः ॥२१ ॥

व्याख्या - बाह्येन्द्रियजन्यस्थूला मलसंज्ञका रागद्वेषादयः शिष्यस्य स्वसाधनया निवारितव्याः।

अर्थ - बाह्य इन्द्रियों से जन्य स्थूल मलसंज्ञक राग-द्वेष आदि शिष्य की निजी साधना के द्वारा निवारण किये जाने चाहिए।

गृहपतिसूत्रम्

सूक्ष्मा विक्षेपा गुरुनिष्कृतिः ॥२२॥

व्याख्या - अन्तःकरणजन्यसूक्ष्मा विक्षेपसंज्ञकाविद्यास्मितादयो गुरुकृपया लब्धशोधनप्रक्रियया निवारितव्याः।

अर्थ - अन्तःकरण से जन्य सूक्ष्म विक्षेपसंज्ञक अविद्या, अस्मिता आदि गुरु की कृपा से प्राप्त शोधन की प्रक्रिया से निवारण किये जाने चाहिए।

गृहपतिसूत्रम्

अव्यक्तान्यावरणानीष्टनिष्कृतिः ॥२३॥

व्याख्या - ईशमाययाव्यक्तकारणभूतविघ्नान्यावरण –

संज्ञकानीष्टसेवनकीर्तन समर्पणभावनया निवारितव्यानि।

अर्थ - ईश्वर की माया से अव्यक्त कारणों से उत्पन्न आवरणसंज्ञक विघ्नों को अपने इष्ट की सेवा, कीर्तन एवं उसके प्रति समर्पण की भावना से निवारण किये जाने चाहिए।

गृहपतिसूत्रम्

काले च ॥२४॥

व्याख्या - जन्मजन्मान्तरार्जितप्रारब्धक्षयकाल ईश्वरकृपया जायते तत्त्वबोधः। बहूनां जन्मनामन्ते योग्यतामधिगम्य गुरुमुपगम्येष्टसायुज्यमवाप्नोति।

अर्थ - जब जन्म-जन्मान्तर से अर्जित प्रारब्ध के क्षय का काल आता है, तब ईश्वर की कृपा से तत्त्वबोध होता है। अनेकों जन्मों के अन्त में योग्यता को प्राप्त करके, गुरु के पास जाकर इष्ट के साथ सायुज्यता को प्राप्त करता है।

गृहपतिसूत्रम्

प्रकृतिः ॥२५॥

व्याख्या - प्र इति प्रकृष्टमिति। कृतीति रचनार्थे। परिवर्तनशीलां नित्यनिरन्तरं नवीनां प्रकृष्टां कृतिं करोति सा प्रकृतिः।

अर्थ - 'प्र' का अर्थ श्रेष्ठ, ऐसा है। रचना के अर्थ में कृति शब्द का प्रयोग होता है। परिवर्तनशील, नित्य, बिना रुके, नयी एवं श्रेष्ठ रचना करती है, वह प्रकृति है।

गृहपतिसूत्रम्

मूला परा ॥२६॥

व्याख्या - मूला मूलप्रकृतिरभिन्ना ब्रह्मणा परासंज्ञका।

अर्थ - मूला मूलप्रकृति को कहते हैं जिसका नाम परा है एवं जो ब्रह्म से अभिन्न है।

गृहपतिसूत्रम्

अपराभिव्यक्ता च ॥२७॥

व्याख्या - सर्गकालेऽपराशक्त्याभिव्यक्तीकृता भवति।

अर्थ - सृष्टिकाल में अपराशक्ति के माध्यम से वह अपनी अभिव्यक्ति करती है।

गृहपतिसूत्रम्

द्वैतेऽद्वैतमद्वैते द्वैतम् ॥२८॥

व्याख्या - एनयावरणशक्त्या ब्रह्मजीवयोर्भेदं दृश्यत आवरणनाशेनैक्यमिति। एनयाद्वैते ब्रह्मणि जीवत्वेन द्वैतदर्शनञ्च द्वैते जीवे ब्रह्मत्वेनाद्वैतदर्शनञ्च कार्यते।

अर्थ - इसके द्वारा आवरणशक्ति के माध्यम से ब्रह्म एवं जीव में भेद दिखता है। आवरण के नाश होने पर एकता दिखती है। इसके द्वारा अद्वैत ब्रह्म में जीवत्व की भावना से द्वैत एवं द्वैतदृष्टि वाले जीव में ब्रह्मत्व की भावना से अद्वैतदर्शन का कार्य किया जाता है।

गृहपतिसूत्रम्

परमामाये ॥२९॥

व्याख्या - अपराया द्वे शक्तयः परमा माया चेति।

अर्थ - अपरा प्रकृति की दो शक्तियाँ होती हैं। परमाशक्ति एवं मायाशक्ति।

गृहपतिसूत्रम्

साम्ये स्थैर्यम् ॥३० ॥

व्याख्या - यदा एते परमामाये साम्यावस्थामाप्नुतस्तदा स्थैर्यं भवति सर्गतिरोधाने।

अर्थ - जब ये दोनों परमा एवं माया साम्यावस्था को प्राप्त होती हैं तब स्थिरता आ जाती है और सृष्टि का विलोप हो जाता है।

गृहपतिसूत्रम्

वैषम्ये क्षोभः ॥३१ ॥

व्याख्या - यदा एते परमामाये वैषम्यावस्थामाप्नुतस्तदा प्रकृत्यां क्षोभो भवति सर्गादौ।

अर्थ - जब ये दोनों परमा एवं माया वैषम्यावस्था को प्राप्त होती हैं तब प्रकृति में क्षोभ आ जाता है और सृष्टि प्रारम्भ हो जाती है

गृहपतिसूत्रम्

क्षोभाद्बन्धः ॥३२ ॥

व्याख्या - क्षोभकाले चेतनात्मा बाह्यावरणसंसर्गेण

सत्त्वरजस्तम आदिभिर्वाष्टपाशैराबद्धो भवति।

अर्थ - जब क्षोभकाल होता है तो चेतनात्मा बाह्य आवरण के संसर्ग से सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण अथवा (घृणा, लज्जा, भय, जुगुप्सा, जात्यभिमानादि) अष्टपाश से बन्ध जाता है।

गृहपतिसूत्रम्

बन्धेन विस्मृतिः ॥३३॥

व्याख्या - त्रिगुणाष्टपाशबद्धदोषेण स्वमूलप्रत्यगात्मरूपं विस्मर्यतेऽनया।

अर्थ - तीनों गुण एवं अष्टपाश से बन्धे होने के दोष से इसके द्वारा अपने मूल प्रत्यगात्मविज्ञानमय स्वरूप का विस्मरण हो जाता है।

गृहपतिसूत्रम्

साम्ये मूलत्वम् ॥३४॥

व्याख्या - प्रकृतेस्त्रैगुण्यसाम्यावस्थायां तिरोहिते सर्गे मूलस्वरूपं पुनरनुभूयतेऽनया।

अर्थ - प्रकृति के तीनों गुणों की साम्यावस्था में सृष्टि के विनष्ट हो जाने पर इसके द्वारा पुनः अपने मूलस्वरूप की अनुभूति होती है।

गृहपतिसूत्रम्

सङ्कल्पात् ॥३५॥

व्याख्या - सद्वृत्त्या कल्पयति तदा सृजते लोकान्।

अर्थ - जब सद्वृत्ति का आश्रय लेकर कल्पना करता है तो सृष्टि होती है।

गृहपतिसूत्रम्

विकल्पात् ॥३६॥

व्याख्या - विकृतवृत्त्या कल्पयति तदा संहरते लोकान्।

अर्थ - जब विकृतवृत्ति का आश्रय लेकर कल्पना करता है तो लोकों का संहार होता है।

गृहपतिसूत्रम्

प्रकल्पात् ॥३७॥

व्याख्या - प्रकृष्टवृत्त्या कल्पयति तथा पालयते लोकान्।

अर्थ - जब प्रकृष्टवृत्ति का आश्रय लेकर कल्पना करता है तो लोकों का पालन करता है।

गृहपतिसूत्रम्

संयोगात् ॥३८॥

व्याख्या - मायां हित्वा हेतुजालञ्च चिन्तयन् स्वात्मनिष्कलविग्रहञ्चेतनो सम्यक् प्रकारेण ब्रह्मणि युज्यते।

अर्थ - माया एवं उसके हेतुभूत सांसारिक जालों को नष्ट करके अपने निष्कल स्वरूप का चिन्तन करते हुए चेतन भली प्रकार से ब्रह्म से जुड़ जाता है।

गृहपतिसूत्रम्

वियोगात् ॥३९॥

व्याख्या - मायाकृष्टो भूत्वा हेतुजालेनाबद्धोऽजानन् स्वात्मनिष्कलविग्रहञ्चेतनो ब्रह्मणो विदूर्यते ।

अर्थ - माया से आकृष्ट होकर उसके हेतुभूत सांसारिक जालों में फंसा हुआ अपने निष्कल स्वरूप का चिन्तन न करते हुए ब्रह्म से दूर हो जाता है।

गृहपतिसूत्रम्

प्रयोगात् ॥४० ॥

व्याख्या - प्रकृतेरात्मनश्च सम्बन्धं पशुपाशतयाकुर्वन्नात्ममायामिति मत्वा शिवशक्त्यादिवद्दिव्यभावनया साधयन्नेवं प्रयोगत्वात्पशुपाशमोक्षणम्।

अर्थ - प्रकृति एवं अपना सम्बन्ध पशु एवं पाश के समान न रखते हुए, 'यह तो मेरी ही माया है' ऐसा मानकर शिवशक्ति आदि के समान दिव्यभाव से साधना करते हुए इस प्रयोग से पशुभाव वाले जीव का मायापाश से मोक्ष हो जाता है।

गृहपतिसूत्रम्

एकः ॥४१ ॥

व्याख्या - एको रुद्रो न द्वितीय इत्याथर्वणी श्रुतिः। एकैवाहं जगत्यत्रेति सप्तशतीसंहिता। तदेकाक्षरं ब्रह्म शिवशक्त्यात्मकम्।

अर्थ - अथर्ववेद की श्रुति कहती है कि रुद्र एक ही है, दो नहीं। सप्तशतीसंहिता (में देवी) कहती है कि मैं जगत् में अकेली ही हूँ। वह एक अविनाशी शिवशक्त्यात्मक ब्रह्म है।

गृहपतिसूत्रम्

एकोऽपि द्विधा ॥४२॥

व्याख्या - पशुरूपेण तुषबद्धो व्रीहीवज्जीवावरणभावनया एकोऽपि द्विविधो भवति। द्वा सुपर्णा सयुजा सखायेति लाक्षणिकी श्रुतिः।

अर्थ - पशुरूप से, छिलके से ढके धान के समान जीव के आवरण की भावना से एक होता हुआ भी दो होता है। वेदोक्त लाक्षणिक वचन है कि वे दो सुन्दर पंखों वाले सखाभाव से युक्त समाश्रित पक्षी हैं।

गृहपतिसूत्रम्

एकोऽपि त्रिधा ॥४३॥

व्याख्या - स चेतनः पशुरूपेण जीवो भोक्ताथवा, पाशरूपेण माया भोग्याथवा, पशुपतिरूपेण ब्रह्म प्रेरयिताथवैवमेकोऽपि त्रिविधो भवतीति श्रुतिः।

अर्थ - वह चेतन पशुरूप में जीव अथवा भोक्ता, पाशरूप में माया अथवा भोग्या एवं पशुपतिरूप में ब्रह्म अथवा प्रेरक होता है, इस प्रकार से एक होने पर भी तीन प्रकार का हो जाता है, ऐसी श्रुति है।

गृहपतिसूत्रम्

बिम्बत्वात् ॥४४॥

व्याख्या - त्रैगुण्यक्षोभजन्यतत्त्वदर्पणजन्यबिम्बे ब्रह्म जीववद्भासते तस्मादेकोऽपि सन् बहुविधः।

अर्थ - तीनों गुणों के क्षोभ से जन्य तत्त्वरूपी दर्पण के कारण उत्पन्न बिम्ब में ब्रह्म जीव के समान प्रतिभासित होता है, अतएव एक होता हुआ भी बहुत प्रकार का दिखता है।

गृहपतिसूत्रम्

लयेन विलयः ॥४५॥

व्याख्या - योगभक्तिज्ञानाकृष्टजीवविशेषो नानाविधनिकृतिनक्रचक्रनिवृत्तो भूत्वा ब्रह्मणि विलीयते।

अर्थ - योग, भक्ति एवं ज्ञान के द्वारा खींचा गया जीवविशेष अनेकों प्रकार के नरक के दुष्कर चक्र से निकलकर ब्रह्म में विलीन होता है।

गृहपतिसूत्रम्

लयेन प्रलयः ॥४६॥

व्याख्या - भूततन्मात्रेन्द्रियाकृष्टजीवविशेषो नानाविधनिकृतिनक्रचक्रगतो भूत्वा संसारे प्रलीयते।

अर्थ - भूत, तन्मात्रा एवं इन्द्रियों के द्वारा खींचा गया जीवविशेष अनेकों प्रकार के नरक के दुष्कर चक्र में फंसकर संसार में प्रलीन होता रहता है।

गृहपतिसूत्रम्

भ्रमणशीलत्वात् ॥४७॥

व्याख्या - स्वकर्मजन्यप्रारब्धवशाज्जीवः संसारेऽस्मिन्नानाविधयोनिषु परिभ्रमन् मुह्यति तस्मादब्रह्मणत्वम्।

अर्थ - अपने कर्म से निर्मित प्रारब्ध के वशीभूत होकर जीव इस संसार में अनेकानेक प्रकार की योनियों में भटकता हुआ मोहित होता रहता है अतएव ब्रह्म के सन्निकट नहीं हो पाता।

गृहपतिसूत्रम्

श्रुतिफलत्वात् ॥४८॥

व्याख्या - सकामस्वर्गादिसुखफलभोगप्रदानलोलुपताकारक - श्रुतिवाक्येषु विमुह्यन् फलकामनयेशरूपं विस्मृत्य न खलु मुञ्चति।

अर्थ - सकाम स्वर्गादि सुखदायक फलों के प्रदान हेतु उक्त लोभवर्द्धक वेदवाक्यों में मोहित होता हुआ फलोपभोग की कामना से ईश्वर के स्वरूप को भूलकर कभी मुक्त नहीं हो पाता।

गृहपतिसूत्रम्

फलावरणम् ॥४९॥

व्याख्या - सकामफलोपभोगमेव ब्रह्मजीवयोर्मध्य आवरणमस्ति। प्रारब्धविधिघटना दुर्निवार्या तस्मादावरणभेदनं क्लिष्टमुच्यते।

अर्थ - सकाम फलों का उपभोग ही ब्रह्म एवं जीव के मध्य आवरण है। विधि के विधान प्रारब्ध को दूर करना अत्यन्त दुष्कर है अतएव आवरण का भेदन भी क्लिष्ट बताया गया है।

गृहपतिसूत्रम्

अन्वयव्यतिरेकाभ्याम् ॥५० ॥

व्याख्या - सर्वेषु दृश्यादृश्येषु ब्रह्मदर्शनमित्यन्वयः। सर्वं निवार्य शेषीभूततत्त्वमुपदिश्य ब्रह्मदर्शनमिति व्यक्तिरेकः। उभयोर्ब्रह्म ज्ञायते तत्त्वचिन्तकैः।

अर्थ - जो भी दृश्य एवं अदृश्य है, उन सबमें ब्रह्म का दर्शन करना अन्वय कहलाता है। सबों को हटाकर जो शेष बचे, उस तत्त्व को लक्ष्य करके ब्रह्म का दर्शन करना व्यतिरेक कहलाता है। दोनों ही विधियों से तत्त्वचिन्तकों के द्वारा ब्रह्म जाना जाता है।

॥ इति गृहपतिसूत्रम् ॥

--*-

श्लोकखण्डे

॥ अथ कालजिह्वाप्रशस्तिः ॥

कालजिह्वाप्रशस्तिः

स्वप्नेऽपश्यद्वदन्तं दिनकरविभवं निग्रहो विप्रमेकं
विप्रोऽहं वै वराहमिहिरकुलगतः प्रश्नमेकञ्च वाश्ये।
नानाशास्त्रेषु प्रोक्ता निखिलमुनिगणैर्धर्मशब्दस्य व्याख्या
धर्मो जिज्ञासितव्यः समसननिनदैर्वाङ्क्ष धर्मस्वरूपम्॥०१॥

विस्तारः - निग्रहाचार्यः स्वप्ने एकं दिनकरविभवं वदन्तं विप्रं अपश्यत्। सोऽवददहं वै वराहमिहिरकुलगतो विप्रोऽस्मि च एकं प्रश्नं वदामि, पृच्छामि। निखिलमुनिगणैर्नानाशास्त्रेषु धर्मशब्दस्य व्याख्या प्रोक्ता। धर्मो जिज्ञासितव्यस्तस्मात्त्वं समसननिनदैर्लघुशब्दैर्धर्मस्वरूपं वाङ्क्ष, ब्रूहि।

अर्थ - निग्रहाचार्य ने अपने स्वप्न में सूर्य के समान प्रभा वाले एक बोलते हुए विप्र को देखा। उस विप्र ने कहा - मैं वराहमिहिर के कुल में उत्पन्न ब्राह्मण हूँ एवं एक प्रश्न कहता हूँ (पूछता हूँ)। विविध शास्त्रों में समस्त मुनियों के द्वारा धर्म शब्द की व्याख्या कही गयी है। धर्म ही जिज्ञासा करने योग्य है (धर्म को ही जानने की कामना करनी चाहिए) अतएव सङ्क्षेप में, कम शब्दों में धर्म के स्वरूप की इच्छा करो- आख्यान करो।

कालजिह्वाप्रशस्तिः

संसारे यो न द्वेष्टीतरजनविभवेभ्यो न स द्वेषणीयः
सङ्क्षेपान्निग्रहेण सकलमतिगता तोसिता धर्मभाषा।
लिख्याः प्राचीनवार्तां गृहपतिसहितां कालजिह्वाप्रशस्तिम्
साधो साधुर्वदन्सः प्रहसितवदनोऽन्तर्हितः सम्बभूव ॥०२ ॥

विस्तारः - निग्रहः प्रत्युवाच - संसारे यो जन इतरजनविभवेभ्यो न द्वेष्टि, स न द्वेषणीयः। एवं सङ्क्षेपादेव निग्रहेण समस्तजनानां मतिगता धर्मभाषा तोसिता, उक्ता। तदनन्तरं स विप्रोऽवदत् - या प्राचीना वार्ता गृहपत्या सह अभवत् तां कालजिह्वाप्रशस्तियुक्तां लिख्याः। पुनःसाधो ! साधुरिति वदन् सः प्रहसितवदनोऽन्तर्हितः सम्बभूव।

अर्थ - निग्रहाचार्य ने उत्तर दिया - संसार में जो दूसरे लोगों के वैभव को देखकर उनसे द्वेष नहीं करता है, ऐसे व्यक्ति से द्वेष नहीं करना चाहिए (यही धर्म है)। इस प्रकार से संक्षेप में ही निग्रह के द्वारा सभी लोगों की मति में समझ आ जाये, ऐसी धर्म की परिभाषा कही गयी। इसके बाद उस ब्राह्मण ने कहा - जो पुरानी बातचीत गृहपति के साथ हुई थी, उसे कालजिह्वाप्रशस्ति के साथ लिखो। फिर 'हे साधो ! साधु' ऐसा कहते हुए, मुस्कुराते हुए स्वरूप वाले वे अन्तर्धान हो गए।

कालजिह्वाप्रशस्तिः

प्रातःकाले प्रबुद्धे सति विगतनिशास्वप्नवार्तां विचिन्त्य
सूत्रान् श्लोकान् लिलेखामरपतिसवनव्यासयुक्तान् सुगम्यान्।
व्याख्यायुक्तानतीतगृहपतिघटनासंयुतानद्भुताञ्च
लोकानां धर्मरूपस्थितिगतिमतये कालजिह्वाप्रशस्तिम्॥०३॥

विस्तारः - प्रातःकाले यदा निग्रहो प्रबुद्धस्तदा विगताया निशायाः स्वप्नवार्तां विचिन्त्यामरपतेः शक्रस्य सवनसङ्ख्यकान् शतान् सुगम्यानद्भुतानतीतकालस्य गृहपतिघटनायुक्तान् व्याख्यायुक्तान् सूत्रान् श्लोकान् कालजिह्वाप्रशस्तिञ्च लोकानां धर्मरूपस्य स्थितेर्गतेर्मतये लिलेख।

अर्थ - प्रातःकाल में जब निग्रहाचार्य उठे तो पिछली रात्रि की स्वप्नवार्ता का चिन्तन करके देवताओं के स्वामी इन्द्र के यज्ञों के विस्तार की संख्या वाले अर्थात् सौ की संख्या में सुगम्य एवं अद्भुत, पूर्वकाल के गृहपतिघटना से युक्त, व्याख्या से युक्त सूत्र, श्लोकों एवं कालजिह्वाप्रशस्ति को संसार के लोगों के धर्मरूप की स्थिति, उसमें गति एवं वैसी मति के उद्देश्य से लिखा।

कालजिह्वाप्रशस्तिः

किं ब्रह्म को विवेकः कतिविधकथनैस्तं विजाने प्रबुद्ध
को धर्मः के च वर्णा विविधयुगपराः केषु धर्मः स्थितो वा।
किं सत्कर्म कुकर्मांशलविधिघटना का च यावारणीया
सर्वप्रश्नोत्तराणि ववणतुरनमौ स्वप्नकाले महान्तौ ॥०४॥

विस्तारः - हे महामते ! किं ब्रह्म अस्ति, को विवेकोऽस्ति, कतिविधकथनैर्वा केषु वाक्येषु तमहं विजाने ? को धर्मो भवति च के विविधयुगपरायणा वर्णा भवन्ति ? अथवा धर्मः केषु स्थितः ? किं सत्कर्म, किं कुकर्म ? या अवारणीया अंशलसंज्ञिका बलशालिनी विधिघटना नियतिर्वा भवति, सा का ? एवं सर्वान्प्रश्नानुत्तराणि च तावनमौ महान्तौ विप्रौ गृहपतिनिग्रहौ स्वप्नकाले परस्परं ववणतुरूचतुः।

अर्थ - हे महामते ! ब्रह्म कौन है, विवेक क्या है अथवा उसे मैं किस प्रकार से कितनी उक्तियों के द्वारा जानूँ ? धर्म क्या होता है और विविध युगों के आश्रय वाले वर्ण क्या होते हैं ? अथवा धर्म किन में स्थित रहता है ? सत्कर्म क्या है ? कुकर्म क्या है ? जिसका निवारण नहीं किया जा सकता, ऐसी अंशलसंज्ञा वाली, बलशालिनी, विधाता की घटना अथवा जो नियति होती है, वह कौन है ? इस प्रकार से सभी प्रश्नोत्तरों को उन दोनों महान् ब्राह्मण गृहपति एवं निग्रहाचार्य ने स्वप्नकाल में परस्पर बोला।

कालजिह्वाप्रशस्तिः

पूर्वे शैलं प्रतीच्यां शशहरिणकरीखङ्गव्याघ्रैश्च युक्तं
दावं याम्यां विशालां हरितकृषिधरां शोभनीयां सुरम्याम्।
नानाचित्रप्रजातीति तिमिररहितान् धेनुसङ्घानुदीच्यां
चाग्रे हर्म्यं चतुर्भिर्विभजितविभवं स्वप्नकाले ददर्श॥०५॥

विस्तारः - स्वप्नकाले निग्रहाचार्य आत्मानमेकस्मिन् क्षेत्रे लब्धवान् यत्र पूर्वदिशायां शैलः पश्चिमे च शशमृगगजखङ्गव्याघ्रादिवन्यजीवैर्वृतं वनमासीत्। दक्षिणदिग्भागे शोभायुक्तं रमणीयं हरितयुक्तं कृषिक्षेत्रमुत्तरे च विविधवर्णाभिः प्रजातिभिरुपद्रवान्धकारमुक्ताभिर्गोभिः पूरितो धेनुसङ्घ आसीत्। निग्रहाचार्यः स्वाग्रत एकं विशालं हर्म्यं राजसदनं वा ददर्श यस्य चत्वारो विभागा आसन्।

अर्थ - स्वप्नकाल में निग्रहाचार्य ने अपने आप को एक ऐसे स्थान पर पाया जहाँ पूर्वदिशा में एक पर्वत था और पश्चिम दिशा में खरगोश, हिरण, हाथी, गैंडे, बाघ आदि वन्य प्राणियों से भरा हुआ वन था। दक्षिण दिशा में विशाल खेत था जो हरियाली से भरा, शोभायुक्त एवं रमणीय था। उत्तर दिशा में विविध रंग एवं प्रजातियों वाली, उपद्रव के अन्धकार से रहित गायों से भरा गोसंघ था। निग्रहाचार्य ने अपने आगे एक विशाल

राजमहल को देखा जो चार भागों में बंटा हुआ था।

कालजिह्वाप्रशस्तिः

जम्बून्यग्रोधचूतपनसकुणिपलाशार्कश्रीवृक्षकुन्दा -
श्वत्थाशोकाशुवल्लीकरकवरत्वचैराप्लुते सूक्ष्मशत्रे।
क्रीडन्तो धेनुवत्सान्तुरगगतियुतान् पुष्पकौमार्यगात्रान्
दृष्ट्वा दृश्यं प्रसन्नः प्रमुदितसुमनो निग्रहः सम्बभूव॥०६॥

विस्तारः - यस्मिन्
जम्बून्यग्रोधाम्रपनसतुन्दपलाशार्कबिल्वकुन्दाश्वत्थाशोकाशु-
वल्लीदाडिमनिम्बादयो वृक्षाः सन्ति, एतादृश उद्याने
पुष्पवन्मृदुलकलेवरानश्वतुल्यशीघ्रगामिनो गोवत्सान् क्रीडन्तो
दृश्यमेनं दृष्ट्वा निग्रहाचार्यः प्रसन्नमना बभूव।

अर्थ - जिसमें जामुन, बरगद, आम, कटहल, तुन्द, पलाश,
अकवन, बेल, कुन्द, पीपल, अशोक, आशुवल्ली (आशुपत्री),
अनार, नीम आदि के वृक्ष लगे हुए हैं, ऐसे बगीचे में फूल के
समान कोमल शरीर वाले, घोड़े के समान शीघ्र गति से दौड़ने
वाले बछड़ों को खेलते हुए, इस दृश्य को देखकर निग्रहाचार्य का
मन प्रसन्नता से भर गया।

कालजिह्वाप्रशस्तिः

गावो दृष्ट्वा श्वसन्तीर्भयविगतमना दण्डमेकञ्च तत्र
शान्त्योषित्वा च दध्यौ निवसति निलये कोऽत्र भूमेः पतिर्वा।
ऊवे जिज्ञासबुद्ध्या गृहपतिरभिधानोऽस्ति वा कोऽपि नास्ति
ईक्षाञ्चक्रे ससर्पालयनिकटमहीं दृश्यमेकं विचित्रम् ॥०७ ॥

विस्तारः - तस्मिनुद्याने निर्भयमना गावः श्वसन्ती दृष्ट्वा तत्रैव दण्डमात्रेण शान्त्या स्थित्वा सोऽचिन्तयत्यदस्मिन् गृहे को निवसति ? कोऽस्या भूमेरधिपतिः ? एवं जिज्ञासया सोऽवाचात्र कोऽपि गृहपतिसंज्ञकोऽस्ति वा नास्तीति ? पुनर्यदा गृहस्य निकटवर्तिनीं भूमिं प्रति जगाम तदा विचित्रं दृश्यमवलोकयत्।

अर्थ - उस उद्यान में निर्भय मन से गायें श्वास ले रही हैं, ऐसा देखकर वहीं दण्डमात्र (आधे घण्टे से कुछ कम समय) के लिए बैठकर फिर उन्होंने चिन्तन किया कि इस घर में कौन रहता है ? कौन इस भूमि का स्वामी है ? इस प्रकार की जिज्ञासा से उन्होंने आवाज दी, यहाँ कोई घर का मालिक है या नहीं ? फिर जब वे घर के कुछ सामने वाली भूमि पर गए तो एक विचित्र दृश्य देखा।

कालजिह्वाप्रशस्तिः

विशालमजिरं तत्र हर्म्यस्य पुरतः स्थितम्।
पार्श्वभागेऽन्नभण्डारमपरे कृष्युपस्कराः ॥०८ ॥

प्रकोष्ठे रुचिरं दक्षे महामणिसमप्रभम्।
दिव्यभोगोपसंयुक्तं यथा वै चक्रवर्तिनः ॥०९॥
जिज्ञासुर्निग्रहोऽपश्यत्तत्रैकं मलिनाम्बरम्।
वृद्धञ्च शूद्रवर्णस्योपविष्टं मुदिताननम्॥१०॥
सम्मुखे हर्म्यभागस्य द्विताले निर्मिते शुभे।
वृषलान्न्यूनविभवे किन्तु सामान्यसुन्दरे॥११॥
ददर्श निम्नताले तु वैश्यमूर्ध्वन्तु क्षत्रियम्।
स्ववर्णतेजःसम्पन्नौ तौ स्वकर्मपरायणौ॥१२॥
तत्रैव पर्णशालेति लिखितं यत्र ब्राह्मणः।
वृन्दापीठन्तु तत्रैव गौरेका यत्र रोदति॥१३॥
रक्तवर्णा बहिस्स्थित्वा रुदन्तीञ्च मुहुर्मुहुः।
तां दृष्ट्वा निग्रहस्तस्याः पार्श्वे गत्वा चचाप ह॥१४॥
भीता साभिद्रुवच्चैतान्तरो विस्मितलोचनः।
पादुकामुपसंहृत्य तुलसीं स ननाम ह॥१५॥
तत्रागमद्बहिः शुक्लः कृतनित्यक्रियो द्विजः।
को भीतयति मे गां रे ब्रुवन्नित्थज्ज्वलन्रुषा॥१६॥

अर्थ - उस महल के सामने एक विशाल आंगन था, जिसकी एक ओर अन्न का भण्डार था तो दूसरी ओर खेती के हलादि यन्त्र रखे हुए थे। दाहिनी ओर एक मनोरम कक्ष था जो महान्

मणियों के समान प्रभा वाला था। जैसे चक्रवर्तियों का भवन होता है, वैसे ही दिव्य भोगों से वह युक्त था।

जिज्ञासु निग्रहाचार्य ने उसके अन्दर मलिन वस्त्रों को धारण किये हुए प्रसन्न मुख वाले एक शूद्रवर्ण के वृद्ध को बैठे हुए देखा। महल के सामने एक शुभ दोतल्ले भवन में, जो शूद्र के भवन की अपेक्षा वैभव में कम था किन्तु सामान्यतः सुन्दर था, उसके निचले तल्ले में एक वैश्य तथा ऊपर के तल्ले में क्षत्रिय को देखा। वे दोनों अपने वर्ण के तेज से सम्पन्न और अपने कर्म में लगे रहने वाले थे।

वहीं पर एक कुटिया थी, जिसके ऊपर "ब्राह्मण" लिखा हुआ था। वहीं पर एक तुलसी का चबूतरा भी था जिसके पास बाहर खड़ी एक लाल रंग की गाय बार बार रो रही थी। उसे देखकर निग्रहाचार्य उसके पास जाकर उसे सहलाने लगे किन्तु वह डर कर भाग गयी। विस्मृत नेत्रों वाले निग्रहाचार्य ने अपनी पादुका उतार कर तुलसी जी को प्रणाम किया, इतने में ही गौरवर्ण के एक ब्राह्मण जो अपने नित्यकर्मों से निवृत्त हो चुके थे, वे क्रोध से जलते हुए, "किसने मेरी गाय को डराया है ?" ऐसा कहते हुए बाहर निकले।

कालजिह्वाप्रशस्तिः

पथिकोऽहं सामयितुं दृष्ट्वा घुण्णे पयस्विनीम्।
किन्तु साभिद्रवद्भीता विवर्णा खिन्नमानसा ॥१७ ॥
अतिथिं मां विजानीहि स्थले वत्स्यामि नात्र वै।
यस्माच्चित्रन्तु सर्वत्र न जाने तस्य कारणम् ॥१८ ॥
सौनिकाद्रक्षिता धेनुस्तस्माद्भीता सुशंकिता।
करिष्यामि भिषक्कर्म भवान्नैवात्र शोचतात् ॥१९ ॥
पथिकस्त्वमतिथिस्त्वमुष्यतां यदि रोचते।
एता सर्वा धेनवो मे भवनं परिचारकाः ॥२० ॥

अर्थ - (निग्रहाचार्य ने कहा) मैं एक पथिक हूँ, इस गाय को भयभीत देखकर इसे सान्त्वना देने के लिए मैंने इसका स्पर्श किया किन्तु यह तनाव और चिन्तित मन वाली होने से और अधिक डर कर भाग गयी। मुझे आप एक अतिथि जानें किन्तु मैं अब यहाँ अधिक देर नहीं रुकूँगा क्योंकि यहाँ बहुत सी विचित्र घटनाओं को देख रहा हूँ, जिसका कारण मैं नहीं जानता। "वह गाय कसाई के हाथ से छुड़ाकर लायी गयी थी, इसीलिए डरी-सहमी हुई है, मैं उसकी चिकित्सा करूँगा, आप इस विषय में चिन्ता न करें। आप यात्री एवं अतिथि हैं, यदि आपकी इच्छा हो तो यहाँ ठहरें। यह सभी गायें, भवन एवं सेवक मेरे ही हैं"।

इत्याकर्ण्य गृहपतेर्वाक्यं प्रोवाच निग्रहः।
कस्माद्धर्म्ये विभागोऽयं वर्णानाञ्च पृथक्पृथक् ॥२१॥
स्वात्मने पर्णशालैषा शूद्राय मणिवेष्टिता।
वैपरीत्यं कथं ब्रूहि यदि गृहपतिर्भवान् ॥२२॥

अर्थ - इस प्रकार से गृहपति की बात को सुनकर निग्रहाचार्य ने कहा - "आपके इस महल में सभी वर्णों के लिये अलग अलग विभाग क्यों हैं ? आप यदि इस गृह के स्वामी हैं तो स्वयं कुटिया में क्यों रहते हैं और शूद्र के लिए मणिमय भवन क्यों है, इस विरोधाभास का कारण मुझे बतायें।"

कालजिह्वाप्रशस्तिः

लोकयात्रानुसारेण यामि सन्तोषमार्गतः।
येऽन्ये त्रैवर्णिकाः सन्ति सर्वे मम सहायकाः ॥२३॥
कलौ शूद्रस्य वार्द्धक्यं द्विजातीनां तु सङ्क्षयः।
तत्सङ्केतं समाचक्ष्व युगधर्मपरायणम् ॥२४॥
तदा गृहपतिं नत्वा प्रसन्नोऽस्मि व्रजाम्यहम्।
अनुज्ञां देहि मे ब्रह्मन्निग्रहः प्रत्यभासत ॥२५॥
नोचितं सोऽब्रवीद्विप्रस्त्वन्न सूर्योदयेऽतिथिः।
मामुपेत्य विनातिथ्यं गृहीत्वा गन्तुमर्हसि ॥२६॥

मद्द्वारतस्तु भग्नाशः कथं स्यान्मम सुकृतम्।
आज्ञापय विना लज्जां किं श्रेयः करवाणि ते॥२७॥

अर्थ - (गृहपति ने कहा) "संसार में जीवनयापन के लिए जितना आवश्यक है, उतने में ही सन्तोष करता हुआ मैं जीता हूँ। ये जो अन्य तीनों वर्ण के लोग हैं, ये सब मेरे सहायक हैं। कलियुग में शूद्रवर्ण अधिक उन्नति करेगा एवं द्विजातियों की हानि होगी, युग पर आश्रित इस सङ्केत को आप देखें।" इसके बाद गृहपति को प्रणाम करके निग्रहाचार्य ने कहा - "मैं प्रसन्न हूँ, अब यहाँ से प्रस्थान करूँगा, आप मुझे अनुमति प्रदान करें।" इसपर उस ब्राह्मण ने कहा कि यह उचित नहीं है। आप सूर्योदय के समय आये हुए अतिथि हैं। मेरे पास आकर बिना आतिथ्य ग्रहण किये ही आपको जाना नहीं चाहिए। मेरे दरवाजे से इच्छापूर्ति हुए बिना आप चले गये तो मेरा कल्याण कैसे होगा ? अतएव संकोच का परित्याग करके मुझे आज्ञा दें कि आपके सुख हेतु मैं क्या करूँ ?

कालजिह्वाप्रशस्तिः

स्थानं देहि तपस्यार्थं नाधिकं याच्यते मया।
निग्रहोक्तिं तदा श्रुत्वा कोऽसीत्युक्त्वा स बाडवः॥२८॥
किं नाम किं कुलं कर्म किं कार्यं तद्वदस्व मे।
एतद्वेदितुमिच्छामि श्रुत्वा प्रोवाच निग्रहः॥२९॥

श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासतन्त्रागमेष्वपि।
प्रमाणरक्षकं किं त्वं मां न जानासि निग्रहम् ॥३०॥
बाह्ये तु निग्रहाचार्यो भोगाचार्य इति स्थितौ।
श्रुत्वोवाच गृहाधीशः कस्मादेतत्तु चक्ष्व मे ॥३१॥
पश्चाद्वर्णानुकूलस्वप्रकोष्ठचयनङ्कुरु।
एवं गृहपतेर्वाक्यं श्रुत्वा प्रोवाच निग्रहः ॥३२॥

अर्थ - तब "मुझे तपस्या के लिए कोई स्थान दे दें, इससे अधिक की याचना मैं नहीं करता", ऐसे निग्रहाचार्य के वचनों को सुनकर उस ब्राह्मण ने पूछा - "आप कौन हैं ? आपका नाम क्या है ? आपका कुल एवं कर्म क्या है ? आप अपना कार्य मुझसे कहें, मैं यह सब जानना चाहता हूँ।" यह सुनकर निग्रहाचार्य ने कहा - श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास, तन्त्र एवं आगमों के प्रमाण की रक्षा करने वाले मुझ निग्रह को क्या तुम नहीं जानते हो ? बाहर से मैं निग्रहाचार्य हूँ एवं अन्दर की स्थिति से भोगाचार्य हूँ। ऐसा सुनकर गृहपति ने कहा - ऐसा कैसे है, मुझे बतायें। उसके बाद आप अपने वर्ण के अनुरूप कक्ष का चयन करके उसमें निवास करें। इस प्रकार गृहपति की बात सुनकर निग्रहाचार्य ने कहा।

कालजिह्वाप्रशस्तिः

चित्ते शास्त्रेण मत्यां परिभ्रमणयुतायां विवेकेन युक्तां
कृत्वा बुद्ध्यां भविष्यं निजहृदिपटलेऽतीतवृत्तान्तयुक्ते।
दृष्ट्वा वच्मीति नूनं सकलसुरजनान् साक्षिरूपेण मत्त्वा
भोगाचार्योऽस्मि कस्मादवतु गृहपते मायया देहभोक्ता ॥३३ ॥

अर्थ - मेरे चित्त में निवास करने वाले शास्त्र के द्वारा सर्वदा भ्रमणशीला मति को विवेक से युक्त करके, अपनी बुद्धि में स्थित भविष्य, तथा अपने अतीत के वृत्तान्तों से युक्त हृदयपटल को देखकर, समस्त देवताओं को साक्षी मानकर, हे गृहपते !! मैं क्यों माया के द्वारा देह का उपभोग करने वाला भोगाचार्य हूँ, यह कहता हूँ। सुनिए...

कालजिह्वाप्रशस्तिः

बद्धा त्रैगुण्ययुक्तां प्रकृतिमधुरिमां विश्वमोहादिहेतुं
ब्राह्मीभावेन हंसे मनुभुवनसदातीतजन्मान्तरेषु।
अश्राम्येनं समस्तं विधिकृतिपटलं कालग्रस्तं सुपूर्वे,
भोगाचार्योऽस्मि तस्मादवतु गृहपते मायया देहभोक्ता ॥३४ ॥

अर्थ - तीनों गुणों से युक्त, मन को आह्लादित तथा विश्व को मोहित करने वाली प्रकृति को बांधकर, ब्रह्मभाव से इस जीवरूप में चौदहों अगम्य भुवनों में अनेक जन्मों से भ्रमण करता हुआ मैं

ब्रह्मा की इस सृष्टि का, जिसका भक्षण काल के द्वारा पहले भी किया जा चुका है, उपभोग करता हूँ। अतः इस प्रकार से, हे गृहपते !! सुनिए !! मैं माया की सहायता से देह का उपभोग करने वाला भोगाचार्य हूँ।

कालजिह्वाप्रशस्तिः

तत्त्वार्थे योगिराजो वसुविभवयुतश्चेद्धृषीकान्नियम्य
कामार्थे धुन्धुकारी विविधविषयभुग्गर्वितः पुंश्चलीशः।
योनौ योनौ च चित्तं दिवि दिवि रमते रम्यते चेद्मदीयं
भोगाचार्योऽस्मि तस्मादवतु गृहपते मायया देहभोक्ता॥३५॥

विस्तारः - अत्र गूढभावः। योनिरिति मदनागारञ्च प्रकृतेर्महद्योनीति। तमाद्यां विश्वयोनिं चिन्तयेऽहमित्यर्थः।

अर्थ - तत्त्वचिन्तन में मैं इन्द्रियों का संयमन करके अष्टसिद्धियों से युक्त योगिराज हूँ। कामसेवन में मैं नाना प्रकार के भोगों का गर्वित होकर उपभोग करने वाला वेश्यागामी धुन्धुकारी (अथवा नाना स्वामियों से युक्त धनलक्ष्मी का उपभोग करने वाला अज्ञानान्धकारवृत्त जीव) हूँ। मेरा चित्त प्रतिदिन कामिनियों की योनि में रमण करता है। (अथवा मेरा मन सूक्ष्ममार्ग में स्थित होकर सदैव महद्योनि प्रकृति और पुरुष का चिन्तन करता है)। अतः इस प्रकार से, हे गृहपते !! सुनिए !! मैं माया की सहायता

से देह का उपभोग करने वाला भोगाचार्य हूँ।

कालजिह्वाप्रशस्तिः

शास्त्रप्रोक्तानसङ्गान्तरकलुषविनाशे सुदक्षाञ्च सूत्रा -
नाचारान्सञ्चरन्तं परिमलभवने वा वने न त्यजामि।
भुञ्जामीत्थं व्यनज्मि सततमतिसमानन्तरेऽस्मिन्त्रिलोके
भोगाचार्योऽस्मि तस्मादवतु गृहपते मायया देहभोक्ता॥३६॥

अर्थ - शास्त्र के द्वारा बताए गए, निःसङ्ग, आन्तरिक पापसमूह का विनाश करने में समर्थ सूत्रों का अपने आचरण में व्यवहार करता हुआ मैं सुखदायक भवनों में अथवा वनों में भी निवास करता हुआ (शास्त्रसूत्रों का) कभी परित्याग नहीं करता।

इसी विधि से भोगता हुआ कहता हूँ कि इस संसार में अपने मन को (योग एवं भोग में) समानान्तर भाव से स्थित रखता हुआ तीनों लोकों में (अथवा स्थितियों में) जीवन यापन करता हूँ। अतः इस प्रकार से, हे गृहपते !! सुनिए !! मैं माया की सहायता से देह का उपभोग करने वाला भोगाचार्य हूँ।

कालजिह्वाप्रशस्तिः

एषा भोग्यास्ति माया त्रिगुणगतियुता प्रेरको ब्रह्मबिन्दु -
र्भोक्तास्तीत्येष जीवोऽतिवदति सुजनो वेदवेदान्तवेत्ता।

आचारे सुप्रतिष्ठो विधिसहितसदा योगसम्भोगयुक्तो
भोगाचार्योऽस्मि तस्मादवतु गृहपते मायया देहभोक्ता ॥३७ ॥

अर्थ - माया तीनों गुणों से युक्त होकर भोग्या होती है। सूक्ष्म रहस्यों वाला ब्रह्म ही उसका प्रेरक है तथा जीव ही उसका भोक्ता है, ऐसा वेदवेदान्त को जानने वाला प्रबुद्ध व्यक्ति बार बार कहता है। अपने आचार में सदा प्रतिष्ठित रहने वाला मैं शास्त्रसम्मत विधि से इस प्रकृति का उपभोग करता हूँ, इससे युक्त होता हुआ भी योगमार्ग का अवलम्बन करता हूँ। अतः इस प्रकार से, हे गृहपते !! सुनिए !! मैं माया की सहायता से देह का उपभोग करने वाला भोगाचार्य हूँ।

कालजिह्वाप्रशस्तिः

स्वान्तःस्थितं हृदि प्रकाशसमूहमध्ये
जीवं विशुद्धममलङ्खलु हंसरूपम्।
मोहाद्यरिप्रबलसङ्कुलजालबद्धं
जानासि किं न भुवि लोपितब्रह्मरूपम् ॥३८

अर्थ - अपने अन्दर स्थित हृदय में प्रकाश समूह के मध्य निवास करने वाले निर्मल, विशुद्ध, शान्त निर्वैर हंसरूप जीव को, जो मोहादि प्रबल शत्रुओं के आक्रमण जाल से बद्ध होकर ब्रह्मरूप के ज्ञान को लुप्त कर बैठा है, क्या तुम उसे नहीं जानते हो ??

कालजिह्वाप्रशस्तिः

त्वं योऽस्यहं खलु च सैव निजात्मरूपः
सानन्दविग्रहतिरस्कृतमोहपाशः ।
जानन्न तं तव सदाभयरूपसिद्धो
भीतोऽस्म्यहं गृहपते श्रृणु मे वचांसि ॥३९ ॥

अर्थ - जो तुम हो, वही मैं हूँ। हम दोनों का आत्मतत्व एक ही तो है। आनन्द से युक्त होना ही हमारी शाश्वत स्थिति है तथा हमने मोह के दुष्कर पाशजाल को तिरस्कार पूर्वक नष्ट कर दिया है। लेकिन उस परमात्मरूप के बोध को तुम नहीं जानते हो जिस कारण मुझ सर्वदा अभय रहने वाले तत्त्व को भी, हे गृहपते !! अब भय लगने लगा है। और ऐसा क्यों है, इस विषय में आगे मेरे वचनों को सुनो..

कालजिह्वाप्रशस्तिः

देहोऽस्मि गोत्रवशवंशकुले वसामि
ब्रूमीत्थमेव खलु चानृतदोषभाग्वा ।
ब्रह्मास्मि तर्हि जगतीह तिरस्कृतोऽस्मि
मोहाद्धुतेन हरिप्रेरणया विनष्टैः ॥४० ॥

अर्थ - यदि मैं यह कहूँ कि मैं देह हूँ, मैं गोत्र, वंश, कुल आदि में निवास करता हूँ, तो मुझे निश्चित ही असत्यभाषण का दोषी

बनना पड़ेगा। और यदि मैं यह कहूँ कि मैं ब्रह्म हूँ, तो यह श्रीहरि की प्रेरणा से उत्पन्न अद्भुत मोह से नष्ट किये गए लोगों के द्वारा इस जगत में मेरा उपहास एवं तिरस्कार किया जाएगा।

कालजिह्वाप्रशस्तिः

ब्रह्मास्म्यहं विधिनिषेधप्रपञ्चमुक्तो
निन्दार्चनादिऋतुकालप्रदेशहीनः।
मायांशनिर्मितशरीरमलाप्लुतेऽस्मिन्
भोक्तास्मि भोग्यमहमेव स्वतन्त्रतन्त्रः ॥४१॥

अर्थ - परन्तु यदि मेरा वास्तविक परिचय पूछा जाए, तो मैं विधि एवं निषेधरूपी प्रपञ्च से रहित ब्रह्म ही हूँ। मैं निन्दा, पूजा, जन्म, ऋतु, काल, स्थान आदि से भी रहित हूँ। माया के अंश से निर्मित इस मलिन देह में मैं ही भोक्ता तथा भोग्य भाव से स्वतन्त्र तन्त्र का अवलम्बन करके निवास करता हूँ।

कालजिह्वाप्रशस्तिः

सदा देहविनिर्मुक्तो वर्णातीतो ह्यगोचरः।
कथं निर्धारये धाम वर्णदृष्ट्या वदस्व मे॥ ४२॥
धेनुवेदात्मनाञ्चैवैको वर्णस्तु पुरा श्रुतिः।
वत्स्याम्यहं गवां मध्ये तस्माद्वासं प्रकल्पय॥४३॥
एतच्छ्रुत्वा वचो विप्र उवाच विदितं मया।

भवान्तु ब्राह्मणः श्रेष्ठो मत्कृपार्थमुपागतः ॥४४ ॥
मद्गृहे कुरु त्वं वासं नैव नैवेति निग्रहः ।
गृहेऽहं ते न वत्स्यामि किञ्चिदन्यत्प्रबन्धय ॥४५ ॥

अर्थ - मैं इस देह से सर्वथा मुक्त, वर्णातीत अगोचर आत्मा हूँ, फिर मैं वर्ण की दृष्टि से कैसे अपने निवास का निर्धारण कैसे करूँ, ये मुझे बतायें। गौ, वेद एवं आत्मा का वर्ण एक ही है ऐसी प्राचीन श्रुति है, अतएव मैं गायों के मध्य में ही रहूँगा, आप वहीं मेरे निवास का प्रबन्ध करें। इस प्रकार से वचन सुनकर उस ब्राह्मण ने कहा कि मैं जान गया कि आप कोई श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं जो मुझपर कृपा करने के लिए आये हैं। आप मेरे ही घर में निवास करें। इस बात पर निग्रहाचार्य ने कहा - "नहीं, नहीं, मैं आपके घर में नहीं रहूंगा, आप कुछ और प्रबन्ध करें"।

कालजिह्वाप्रशस्तिः

तदा चिन्तातुरो गेहपतिर्हस्तं प्रगृह्य च।
निग्रहमुत्तरदिशमानयद्यत्र विप्लवः ॥४६ ॥
तत्रैक पङ्क्तौ जीर्णानि प्रकोष्ठानि बहूनि च।
आभ्यन्तरेऽस्थिमज्जाभिरसृक्खण्डितमस्तकैः ॥४७ ॥
खण्डाङ्घ्रिहस्तसङ्घैश्च बीभत्सं यमगेहवत्।
कक्षं तृतीयमागत्य गृहेशो प्रत्युवाच ह ॥४८ ॥

गृहपतिसूत्रम्

अत्रानुजो वसति मे विक्षिप्तो हिंसकोऽशुचिः।
पूर्वेऽनेकास्तु पथिकास्तेनात्रैव निपातिताः ॥४९ ॥
निगडे बद्धमानोऽप्यनुजो मेऽस्ति पिशाचवत्।
गृहपतिस्तथोवाच तिष्ठतां यदि रोचते ॥५० ॥
पैशाचीं गतिलब्धोऽयं कथं नैव चिकित्सितः।
ववाण पृष्टो गेहेशो भिषजां वै शवा अमी ॥५१ ॥
भवान् ब्रह्मविदां श्रेष्ठो यदिच्छसि कुरुष्व तत्।
गोवृन्दे मम गेहे वात्र तिष्ठतु निजेच्छया ॥५२ ॥
किन्तु प्राथमिके किञ्चिदल्पाहारञ्च स्वीकुरु।
अन्नाहारं फलाहारं यदिच्छसि वदस्व मे ॥५३ ॥

अर्थ - तब चिन्तायुक्त होकर गृहपति निग्रहाचार्य के हाथ को पकड़ कर उन्हें उत्तरदिशा की ओर ले आये जहाँ विध्वंस जैसा दृश्य था। एक पंक्ति में बहुत से टूटे हुए कमरे थे। अन्दर से वह कक्ष हड्डी, मज्जा, खून, कटे हुए मस्तक, कटे हुए हाथ-पैर के समूहों से यमलोक के समान भयानक दिखायी दे रहा था। उसमें तीसरे कक्ष में आकर गृहपति ने कहा - "यहाँ मेरा छोटा भाई रहता है, जो विक्षिप्त, हिंसक एवं अपवित्र है। पूर्व में उसके द्वारा यहाँ आने वाले अनेकों यात्री मार दिये गए हैं। बेड़ियों में बांध कर रखने पर भी मेरा छोटा भाई पिशाच के समान हो गया है।" गृहपति ने कहा कि यदि आपको अच्छा लगे तो यहाँ

रह सकते हैं। पैशाची गति को प्राप्त होने पर भी इसकी चिकित्सा क्यों नहीं की गयी, निग्रहाचार्य के द्वारा ऐसा पूछे जाने पर गृहपति ने कहा कि ये सब शव चिकित्सकों के ही हैं। आप ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ हैं, आपकी जो इच्छा हो, वह करें। आप गायों के मध्य में रहें, मेरे घर पर अथवा यहाँ अपनी इच्छा के अनुसार रहें, किन्तु सबसे पहले आप कुछ अल्पाहार स्वीकार करें। आपको अन्न अथवा फलादि, जिसका भी आहार ग्रहण करना हो, वह मुझे बतायें।

कालजिह्वाप्रशस्तिः

पीठं संस्थाप्य गेहेशो मण्डपे पार्श्ववर्तिनि।
पाद्यादिभिश्च सम्पूज्य स्थापयामास निग्रहम् ॥५४॥
आतिथ्यहेतवे तत्र सुताज्ञायां प्रबोधयत्।
भूमौ स्थित्वा स्वयं बद्धाञ्जलिर्भूत्वावदत्पुनः ॥५५॥
गुरुणाधीतवान्धर्मसर्वस्वं मे प्रतीयते।
भवान् छिन्धि ममाशान्तिदायकं प्रश्नसङ्कुलम् ॥५६॥
यावदानयतीष्टं ते फलं भोज्यं प्रिया मम।
तावत्सद्धर्मवार्तायै स्वीकृतिं दातुमर्हसि ॥५७॥

अर्थ - गृहपति ने बगल के मण्डप में एक श्रेष्ठ आसन लगाकर एवं पाद्य आदि के द्वारा अर्चना करके निग्रहाचार्य को बैठाया।

उनके आतिथ्य हेतु अपनी पत्नी एवं पुत्री को निर्देश देकर स्वयं हाथ जोड़कर भूमि पर बैठ गये एवं इस प्रकार कहा - "मुझे प्रतीत होता है कि आपने अपने गुरु से सम्पूर्ण धर्म का अध्ययन किया है, अतएव मुझे अशान्त करने वाले प्रश्नसमूहों का आप नाश करें। जितनी देर में मेरी पत्नी आपको रुचिकर लगने वाले फल-भोजन आदि को लेकर आती है, उतनी देर सद्धर्म की चर्चा हेतु आपकी स्वीकृति चाहिए।"

कालजिह्वाप्रशस्तिः

इत्थं श्रुत्वा वचस्तस्य निग्रहः प्रत्यभासत।
त्वमसाधारणो ब्रह्मन् गिरयार्थेन तेजसा ॥५८॥
निश्चितार्थं न वक्तव्यं धर्मस्य गहना गतिः।
अमुकर्षिमते वापि मते मेऽस्तीति कथ्यते ॥५९॥
न पूर्णनिर्णयं दद्यादिति देवव्रती श्रुतिः।
ब्रह्मा लोकगुरुर्धर्मपूर्णनिर्णयदायकः ॥६०॥
इतरे मतवैभिन्ये न वै जानन्ति सर्वतः।
ज्ञात्वैनां धर्ममर्यादां पृच्छतूत्तरलोलुपः ॥६१॥
न ब्रह्मणोऽपरं श्रेयस्तदाह विनयान्वितः।
ब्रह्म जिज्ञासितव्यं वै सर्वभूतगतिः परः ॥६२॥
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते।
सर्वप्रश्नोत्तरं ज्ञानं ब्रह्मज्ञानं प्रयच्छ मे ॥६३॥

अर्थ - उस गृहपति के ऐसे वचनों को सुनकर निग्रहाचार्य ने कहा कि हे ब्रह्मन् ! आपकी वाणी, वैभव एवं तेज से मैं समझ गया हूँ कि आप असाधारण हैं। धर्म की गति अत्यन्त सूक्ष्म है अतः "मात्र यही धर्म है" ऐसा निश्चित निर्णय नहीं देना चाहिए। अमुक ऋषि का यह मत है, अथवा मेरे मत में यह बात ऐसी समझ में आती है, इस प्रकार से कहा जाता है। पूर्णनिर्णय न दे, ऐसी देवव्रती श्रुति है। केवल लोकगुरु ब्रह्मा ही पूर्ण निर्णय देने में अधिकृत हैं। शेष जन मतवैभिन्न्य के कारण धर्म को सम्पूर्णतया नहीं जानते हैं। धर्म की इस मर्यादा को जानकर, अब उत्तर की इच्छा रखने वाले आप जो चाहें वह पूछ लें। तब विनय से युक्त होकर उस गृहपति ने कहा - "ब्रह्म से बड़ा कल्याण कुछ नहीं है। जो सभी प्राणियों की गति है, प्राणियों से परे उन ब्रह्म की ही जिज्ञासा करनी चाहिए। जिसको जानने के बाद यहाँ कुछ और जानना शेष नहीं रह जाता, ऐसे सभी प्रश्नों का उत्तर देने वाले ब्रह्मज्ञान को आप मुझे प्रदान करें।"

कालजिह्वाप्रशस्तिः

धन्योऽसि त्वं गृहस्वामिन् धन्या ते मतिरीदृशी।
वाङ्मनश्चित्तदेहेन्द्रप्राणातीतं पुरातनम् ॥६४॥
स्वमत्या सम्प्रवक्ष्यामि ब्रह्मज्ञानं निशामय।
प्रशंसन् वक्तुमारेभे निग्रहो ब्रह्मवित्तमः ॥६५॥

अर्थ - "हे गृहपते ! तुम धन्य हो एवं तुम्हारी यह मति भी धन्य है। वाणी, मन, चित्त, देह, इन्द्रिय एवं प्राणों से अतीत, जो पुरातन है, उस ब्रह्मज्ञान को अपनी मति के अनुसार कहता हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो।" इस प्रकार से प्रशंसा करके ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ निग्रहाचार्य ने बोलना प्रारम्भ किया।

(निग्रहोपदेशः)

ब्रह्म सत्यमसत्यञ्च ॥६६॥ सनातनत्वात्सत्यम् ॥६७॥ अविनाशित्वेनानभावमभावहीनं सत्यमिति गीतायाम् ॥६८॥ असत्यरूपे मिथ्यात्मके संसारे कणशो व्याप्तं तस्मादसत्यम् ॥६९॥ धर्मश्चैवाधर्मश्च ॥७०॥ धारणीयत्वेन सर्वं धारयति तस्माद्धर्मः ॥७१॥ संसारे व्याप्नुवन्नपि मोहग्रस्तेभ्य आत्मानं न धारयति तस्मादधर्मः ॥७२॥ ज्ञानञ्चाज्ञानञ्च ॥७३॥ सर्वज्ञत्वेन ज्ञानमिति ॥७४॥ तत्प्रयोगेण मायाशक्त्या चिद्विलाससंसारं सृजत्यज्ञानमिति ॥७५॥ श्रुतिष्वकारो ब्रह्मवाचकः ॥७६॥ तस्मादसत्ये सत्यमधर्मे धर्मोऽज्ञाने ज्ञानमिति ॥७७॥ तत्प्रभावास्तित्वकारकमकारसंज्ञकं ब्रह्म ॥७८॥ सत्यासत्ये धर्माधर्मौ ज्ञानाज्ञाने सर्वं खल्विदं ब्रह्मणा सञ्चालितमितरन्न किञ्चित् ॥७९॥ असत्ये निहितं सत्यं यो जानाति स ब्रह्मवित् ॥८०॥ अधर्मे निहितं धर्मं यो जानाति स ब्रह्मवित् ॥८१॥ अज्ञाने निहितं ज्ञानं यो जानाति स

ब्रह्मवित् ॥८२॥ तद्ब्रह्म तदहम् ॥८३॥ तत्त्वमसि ॥८४॥
धर्माधर्मसत्यासत्यज्ञानाज्ञानपरं यत्तद्ब्रह्मेति विद्धीति
दिव्यभावाश्रिता कौलश्रुतिः ॥८५॥

अर्थ - वह ब्रह्म सत्य भी है और असत्य भी है। सत्य इसीलिए कि वह सनातन है। अविनाशी होने से सनातन का अभाव नहीं होता और जिसका अभाव नहीं, वह सत्य है यह गीता की उक्ति है। असत्य इसीलिए कि वह इस असत्यरूपी संसार के कण कण में व्याप्त है। वह धर्म भी है और अधर्म भी। धर्म इसीलिए क्योंकि वह धारण करने योग्य है और अधर्म इसीलिए क्योंकि वह इस संसार के कण कण में व्याप्त होता हुआ भी मोहग्रस्त जीवों के लिए स्वयं को धारण नहीं करता। वह ज्ञान भी है और अज्ञान भी है। ज्ञान इसीलिए क्योंकि वह सर्वज्ञ है और अज्ञान इसीलिए कि वह उसी के प्रयोग से मायाशक्ति से युक्त संसाररूपी चिद्विलास का निर्माण करता है। श्रुतियों में अकार को ब्रह्म का वाचक बताया गया है। असत्य में भी सत्य है, अधर्म में भी धर्म है, अज्ञान में भी ज्ञान है। उसके अस्तित्व और प्रभाव का कारण उसमें निहित अकाररूपी ब्रह्म है। इसीलिए सत्य और असत्य, धर्म एवं अधर्म, ज्ञान एवं अज्ञान, सभी ब्रह्म से ही संचालित हैं, कुछ भी ब्रह्म से भिन्न नहीं। जो व्यक्ति असत्य, अधर्म एवं अज्ञान में निहित सत्य, धर्म एवं ज्ञान को जान लेता

है वही ब्रह्मवेत्ता है, वही ब्रह्म है, वही मैं हूँ और वही तुम हो। जो धर्माधर्म, सत्यासत्य, ज्ञानाज्ञान से परे है वही ब्रह्म है, ऐसा तुम जानो। यह दिव्यभाव पर आश्रित कौलश्रुति है।

कालजिह्वाप्रशस्तिः

इति खलु श्रुतिवाक्यं दिव्यभावोपयुक्तं
निगदितमतिक्रम्यान्तर्हिताञ्चैव प्रश्नान्।
विनयनतशिरस्सोऽतुल्यतेजो गृहेशो
गुरुरिति खलु मत्वा पादपद्मञ्चचाप ॥८६॥
निग्रहस्त्वं गुरोर्मूर्तिरुवाच द्विजपुङ्गवः।
एतस्मिन्नेव काले तु तस्य भार्या समागमत् ॥८७॥
फलाहारं ततः कृत्वा निग्रहः प्रत्युवाच ह।
विक्षिप्ताक्रान्तसम्भागं मन्येऽहमुचितं द्विज ॥८८॥
सुखे तपः प्रकुर्वन्ति न वै ते साधकोत्तमाः।
वैपरीत्ये तपः कृत्वा नरो भवति साधकः ॥८९॥
नानुजात्तव भीतोऽस्मि यतो नाहं कलेवरम्।
अहं ब्रह्म परानन्दं जरामृत्युविवर्जितम् ॥९०॥

अर्थ - इस प्रकार से दिव्यभाव से युक्त श्रुतिवाक्य, जो मन के अन्दर छिपे हुए प्रश्नों का अतिक्रमण करने वाले थे, उन्हें कहे जाने पर अतुल्यतेजस्वी ब्राह्मणश्रेष्ठ गृहपति ने विनयपूर्वक

मस्तक झुकाकर निग्रहाचार्य के चरणकमलों को पकड़ लिया और कहा कि हे निग्रहाचार्य ! आप गुरुमूर्ति हैं।

इतनी ही देर में उनकी पत्नी वहाँ आ गयीं एवं फलाहार करके के बाद निग्रहाचार्य ने इस प्रकार कहा - "हे ब्राह्मण ! जो कक्ष उस विक्षिप्त व्यक्ति के द्वारा आक्रान्त है, मैं उसे ही उचित मानता हूँ। सुखसाधनों से युक्त होकर जो तपस्या करते हैं वे उत्तम साधक नहीं होते। विपरीत परिस्थितियों में तपस्या करके मनुष्य साधक बनता है। मैं आपके छोटे भाई से भयभीत नहीं हूँ क्योंकि मैं यह शरीर नहीं हूँ। मैं परमानन्दस्वरूप ब्रह्म हूँ जो जरा एवं मृत्यु आदि से रहित है।

कालजिह्वाप्रशस्तिः

आश्चर्यमद्भुतं गात्ररोमहर्षणकारकम् ।
ददर्श निग्रहस्तत्र दिव्यं ज्योतिः कलेवरम् ॥९१॥
न गोवृन्दं न वै हर्म्यं न विक्षिप्तगृहाभिधम्।
न जाया न सुता वापि नोद्यानं नैव मण्डपः ॥९२॥
वपुर्विशालसंयुक्तो गृहेशो प्रत्युवाच ह।
परीक्षा तव पूर्णाभून्निर्णयो यत्त्वया कृतः ॥९३॥
त्वं चिदानन्दवेत्तासि तस्मात्तत्रैव तिष्ठ भो।
एषा माया मम ब्रह्मन् परीक्षार्थं प्रकाशिता ॥९४॥

धर्मोऽहं मां विजानीहि वस त्वं हृदये मम।
भद्रं ते तात ते भद्रमित्युक्त्वान्तरधीयत॥९५॥
निग्रहोऽप्यग्रदिवसेऽद्भुतं तद्रोमहर्षणम्।
विचिन्त्य रचयामास स्वप्नवार्ताकथानकम्॥९६॥
पुनश्च स्वप्नकाले तु विप्रेण चोदितस्तथा।
लिलेख कालजिह्वाख्यां गृहेशसूत्रसंयुताम्॥९७॥

अर्थ - इसी समय शरीर के रोंगटे खड़े कर देने वाले एक अद्भुत आश्चर्य को वहाँ निग्रहाचार्य ने देखा। मात्र एक दिव्य प्रकाशमय शरीर है। न वहाँ गायों का समूह है, न महल है, न विक्षिप्त व्यक्ति का कमरा है। न गृहपति की पत्नी है और न ही पुत्री है। उद्यान एवं मण्डप भी नहीं है। इसी समय अत्यन्त विशाल शरीर वाले उस गृहपति ने कहा - "तुम्हारे द्वारा जो निर्णय लिया गया है, उसके कारण तुम्हारी परीक्षा पूर्ण हुई। तुम चिदानन्द को जानने वाले हो अतः वहीं निवास करो। हे ब्रह्मन्! आपकी परीक्षा के लिए रची गयी यह मेरी माया थी। आप मुझे धर्म जानें एवं अब आप मेरे हृदय में निवास करेंगे। हे तात! तुम्हारा कल्याण हो, कल्याण हो ..." ऐसा कहकर वे अन्तर्धान हो गये। निग्रहाचार्य ने अगले दिन उस रोमाञ्चकारी अद्भुत घटना को सोचकर स्वप्न में हुए इस कथानक को लिखा। पुनः स्वप्नकाल में ब्राह्मण के द्वारा प्रेरित किये जाने पर कालजिह्वाप्रशस्ति को

गृहपतिसूत्र के साथ युक्त करके लिखा।

कालजिह्वाप्रशस्तिः

ध्रुवं ब्रह्म वेदादिवाक्यप्रसिद्धं
ध्रुवः कर्मभोगप्रदाता च कालः।
न यस्या विना जायते मेथते वा
चतुर्दिक्षु सा राजते कालजिह्वा ॥९८॥
हरेश्चक्रनेमौ हरस्य त्रिशूले
महेन्द्रस्य वज्रे च खड्गेऽम्बिकायाः।
ऋषेर्ब्रह्मदण्डे कुमारस्य शक्तौ
कृतान्तस्य दण्डेऽसुराणां कुबुद्धौ ॥९९॥
कुठारे तु रामस्य रामस्य बाणे
हलेऽनन्तदेवस्य दृष्ट्यां शनेर्वा।
सदा दुर्जया या विनाशस्य कर्त्री
प्रचण्डात्मिका राजते कालजिह्वा ॥१००॥

अर्थ - वेद आदि के वाक्यों में प्रसिद्ध ब्रह्म अविनाशी है। कर्म के फल का उपभोग कराने वाला काल भी अविनाशी है। जिसके बिना कोई जन्म नहीं लेता एवं मार नहीं सकता, चारों दिशाओं में वह कालजिह्वा विराजित है। भगवान् विष्णु के चक्र की नेमि में, भगवान् शिव के त्रिशूल में, इन्द्र के वज्र एवं अम्बिका के

खड्ग में, ऋषियों के ब्रह्मदण्ड एवं कार्तिकेय की शक्ति में, यमराज के कालदण्ड एवं असुरों की दुर्बुद्धि में, परशुराम के फरसे तथा श्रीराम के बाण में, अनन्तदेव के हल तथा शनि की दृष्टि में, जो अपराजिता शक्ति, सबों का विनाश करती है, वह प्रचण्ड स्वरूप वाली कालजिह्वा शोभायमान है।

॥इति श्रीनिग्रहाचार्यविरचिता गृहपतिसूत्रसहिता
कालजिह्वाप्रशस्तिः सम्पूर्णा॥

॥ इस प्रकार से श्रीनिग्रहाचार्य के द्वारा विरचित गृहपतिसूत्र के
सहित कालजिह्वाप्रशस्ति सम्पूर्ण हुई॥

--*